'साये में धूप' और 'एल्गार' में व्यक्त प्रवृत्तियों की समतुल्यता

सूर्यकांत रामचंद्र चव्हाण
हिंदी विभाग
राजर्षि शाहू महाविद्यालय (स्वायत्त),
लातूर (महाराष्ट्र)

हिंदी तथा मराठी कविता में गज़लों की दृष्टि से दुष्यंतकुमार और सुरेश भट ये ऐसे राहों के अन्वेषी रहे हैं जिन्होंने पहली बार गज़ल विधा को सामाजिक आयामों से जोड़ा। हालांकि हिंदी गज़लों में अमीर खुसरो, शमशेर और निराला ने एक नयी पृष्ठभूमि तयार की थी। उर्दू में जो जवानी का हाल, माशुक की संगति और इश्क का इज़हार करने तक सीमित रहनेवाली गज़ल दुष्यंतकुमार के कलमों से धधकती आग बनकर अभिव्यक्त होने लगी जबकि मराठी में सुरेश भट की गज़लें सामाजिक प्रतिबद्धता की परिचायक बन गयी। दोनों ने भी भारत तथा वैश्विक घटनाओं को बहुत नजदीकियों से अनुभूत किया। सामाजिक तथा राजनैतिक उथल-पुथल, स्वतंत्रता के पश्चात् जनसामान्य की हुई मोहभंग की स्थिति को इन दोनों ने अपनी पैनी दृष्टि से पढ़ा था। आपात्कालीन जैसे विषाक्त भरी माहौल में दोनों ने भी घुटन महसूस की थी। इसीलिए उनकी गज़लों में अन्यायपूर्ण व्यवस्था के खिलाफ रहे बागी तेवर स्पष्ट रूप से झलकते हैं।

दुष्यंतकुमार की रचना 'साये में धूप' में 'साया' व्यवस्था का प्रतीक है तो 'धूप' अशांति और अव्यवस्था का प्रतीक। जबकि सुरेश भट का 'एल्गार' यह मूल रूप में तुर्की शब्द है। जिसका शाब्दिक अर्थ 'जोर से आक्रमण' या 'प्रहार' होता है। दोनों की गज़लों में अपने कलम के प्रति रही तटस्थता और ईमानदारी स्पष्ट रूप से झलकती है। भाषा विभाग में सहायक संचालक महोदय से जब दुष्यंतकुमार का झगड़ा हुआ था तब उन्होंने फटकारते हुए कहा था- ''मैं सिर्फ कलम की नौकरी करता हूँ और जब तक मैं इसकी नौकरी में हूँ, मुझे किसी की भी चिंता नहीं।''[1] जबकि सुरेश भट अपनी गज़ल में लिखते हैं-

''मागता काय लेखणी माझी.....
ही कुणाचीच बासरी नाही।''[2]

दुष्यंतकुमार और सुरेश भट आम आदमी के पक्ष में थे। आज़ादी तो बड़े संघर्ष से मिली परंतु आम आदमी के जीवन में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। जनसामान्य की फटेहाल जिंदगी का चित्रण करते हुए दुष्यंतकुमार लिखते हैं-

''न हो कमीज तो पेट पाँवों से ढँक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं, इस सफर के लिए।''[3]

वहीं दूसरी ओर सुरेश भट सावन के गीतों की तो बात करते है किंतु सावन में तृण प्यासे है, जहाँ एक-दूसरे के सुख-दुख से कोई वास्ता नहीं रहा -

''दिशा गातात गीते श्रावणाची
कुणाला याद तान्हेल्या तृणाची ?
कशाला एकमेकांची खुशाली ?
कुणाला काळजी नाही कुणाची''[4]

स्वतंत्रता तो मिल गई किंतु देश 'मेरा' प्रतीत नहीं हुआ। सत्ता ने सारे सामाजिक गणित बिगाड़ दिये थे। जिसके कारण आम आदमी विवश हो गया। दुष्यंतकुमार इस विवशता को स्पष्ट रूप से उल्लेखित करते हैं-

''हमारे हाथ तो काटे गये थे
हमारे पाँव भी छोले हुए हैं
नजारों से दुवाएँ माँगते हो,
अकीदे किस कदर पोले हुए हैं।''[5]

जबकि सुरेश भट लिखते हैं-

''तुला हवा तसा धरू कुठून चेहरा
उधार आणला न मी अजून चेहरा
अरे, सुखात नासली तुझी स्वतंत्रता
कधीच टाकलास तू विकून चेहरा |''[6]

इससे भी आगे जाकर सुरेश भट तो पहले से ही तय किये हुए फैसले को अपने शब्दों में बाँधते हैं-

''मला बोलायचे हाते.....कुणी बोलू दिले नाही
जसा आधीच केलेला जुना तो फैसला होता |''[7]

दुष्यंतकुमार और सुरेश भट इन दोनों को उन लोगों से बड़ी घृणा है जो केवल अपने स्वार्थ के लिए चुप्पी साधे बैठे हुए है | दुष्यंतकुमार ऐसे लोगों पर बड़ा प्रहार करते हैं-

''यहाँ तो सिर्फ गूँगे और बहरे लोग बसते हैं,
खुदा जाने यहाँ पर किस तरह जलसा हुआ होगा |
गजब यह है कि अपनी मौत की आहट नहीं सुनते,
वो सब के सब परीशाँ हैं, वहाँ पर क्या हुआ होगा |''[8]

सुरेश भट तो स्वयं की मृत्यु को ही मुक्ति के रूप में व्यक्त करते हैं क्योंकि यह दुनिया पाषाणों और मुर्दों से बनी हुई है-

''इतकेच मला जाताना सरणावर कळले होते
मरणाने केली सुटका जगण्याने छळले होते
ही दुनिया पाषाणांची बोलून बदलली नाही
मी बहर इथे शब्दांचे नुकतेच उधळले होते''[9]

सुरेश भट ऐसे तमाशबीन लोगों को 'मुर्दों की महफिल' के रूप में व्यक्त करते हैं-

''मी रंग पाहिला हया मुर्दाड मैफलीचा.....
कुठल्याच काळजाचा ठोका जिवंत नाही ''[10]

दुष्यंतकुमार और सुरेश भट सामाजिक अभिव्यक्ति के साथ-साथ इश्क की नजाकत, उसकी रूमानियत को बड़े आकर्षक ढँग से व्यक्त करते हैं-

''चाँदनी छत पर चल रही होगी,
अब अकेली टहल रही होगी |
फिर मेरा जिक्र आ गया होगा,
वो बरफ सी पिघल रही होगी |''[11]

जबकि सुरेश भट प्रेमिका के हया की नज़ाकत को अपने शब्दों में झेलते हैं-

''हे तुझे अशा वेळी लाजणे बरे नाही
चेहरा गुलाबाने झाकणे बरे नाही
मैफलित या माझ्या पाहतेस का खाली ?
हाय, लाजणाऱ्याने जागणे बरे नाही |''[12]

स्वतंत्रता के पश्चात् मोहभंग की स्थिति, आपातकालीन परिवेश, धार्मिक उन्माद, खून-खराबा, लोकतांत्रिक व्यवस्था का चरमरा जाना दुष्यंतकुमार और सुरेश भट जैसे ईमानदार और प्रतिबद्ध रचनाकारों के लिए बहुत बड़ी बेचैनी की स्थिति थी | यह छटपटाहट एक भड़ास में तब्दील होकर भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ अंगारों को रापेते हुए चलती हैं-

''मेरे सीने में नहीं तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिए |''[13]

इस बदलाव के लिए दुष्यंतकुमार क्रांति में विश्वास रखते हैं और इस क्रांति के लिए लोगों के जत्थे को ही रास्ते पर उतारने की कोशिश करते हैं-

''हो गयी है पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए,
इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिए।''[14]

सुरेश भट ऐसी व्यवस्था को बड़े यथार्थ रूप में अभिव्यक्त करते हैं-

''त्यांचाच देश ज्यांच्या ताब्यात भाकरी।
त्यांचेच सत्य ज्यांच्या हातात बंदुका।''[15]

स्वार्थ से अंधे होकर सत्ता पर बैठे सत्ताधीशों की खाल उतारने में सुरेश भट जरा भी हिचकिचाते नहीं-

''कालचे सारे लफंगे बैसले सिंहासनी
ढाळतो आम्ही शिकारी लक्तरांची चामरे।''[16]

दुष्यंतकुमार ऐसी व्यवस्था को जड़ से उखाड़ फेंकना चाहते हैं-

''सिर्फ हंगामा खड़ा करना मेरा मकसद नहीं,
मेरी कोशिश है कि सूरत बदलनी चाहिए।''[17]

जबकि सुरेश भट की कलम ऐसे मठाधीशों के विरोध में क्रांति की मशाल बनकर धधकती है-

''अद्यापही सुऱ्याला माझा सराव नाही
उद्यापही पुरेसा हा खोल घाव नाही
साध्याच माणसांचा एल्गार येत आहे.....
हा थोर गांडुळांचा भोंदू जमाव नाही''[18]

दुष्यंतकुमार और सुरेश भट परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। वे पूर्ण रूप से निराशावादी नहीं हैं। आशा है तो जीवन है। हर संकटों को उन्होंने हँसते हुए झेला है। दुष्यंतकुमार लिखते हैं-

''इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,
नाव जर्जर ही, लहरों से टकराती तो है।''[19]

सुरेश भट मानवता के प्रति प्रतिबद्ध रहते हुए आनेवाली पीढ़ी से उम्मीद रखते हैं-

''जगाची झोकुनी दुःखे सुखाशी भांडतो आम्ही
स्वतःच्या झाकुन भेगा मनुष्ये सांधतो आम्ही
जरी या वर्तमानाला कळेना आमुची भाषा
विजा घेऊन येणाऱ्या पिढ्यांशी बोलतो आम्ही।''[20]

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि इनकी गजलों में आशा-निराशा, टूटन-घूटन, पराजय-विवशता, खामोशी, भुखमरी, बेकारी, पीड़ा और राजनीतिक विसंगतियों का मार्मिक चित्रण व्यक्त हुआ है। ये दोनों कवि एक ऐसे रसायन रहे हैं, जिनके शब्दों के पीठ पर जिंदगी के अहसास का बोझ बना रहा। एक ओर से वे मृदु फूलों से नजाकत भरे प्रेमकाव्य तो दूसरी ओर सूरज के किरणों से बने अंगारों से प्रस्थापित समाज को दहलाते हैं।

संदर्भ संकेत सूची-

1. दुष्यंतकुमार की गज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन- डॉ.सरदार मुजावर, पृ.16
2. एल्गार- सुरेश भट, पृ.71
3. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.13
4. एल्गार- सुरेश भट, पृ.84
5. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.19
6. एल्गार- सुरेश भट, पृ.70

7. वही- वही, पृ.52
8. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.15
9. एल्गार- सुरेश भट, पृ.25
10. वही- वही, पृ.110
11. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.28
12. एल्गार- सुरेश भट, पृ.28
13. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.30
14. वही- वही, पृ.वही
15. एल्गार- सुरेश भट, पृ.83
16. वही- वही, पृ.98
17. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.30
18. एल्गार- सुरेश भट, पृ.23
19. साये में धूप- दुष्यंतकुमार, पृ.16
20. एल्गार- सुरेश भट, पृ.24

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com